॥ श्रीः ॥

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला

८६

रुद्रयामलम्

(उत्तरतन्त्रम्)

(प्रथमो भागः)

(१ – ४५ पटलात्मकः)

'सरला'-हिन्दीव्याख्योपेतम्

सम्पादक एवं व्याख्याकार

डॉ० सुधाकर मालवीय

एम. ए., पीएच्. डी., साहित्याचार्य,
संस्कृत-विभाग : कला-संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली

रुद्रयामल का विषय संक्षेप

रुद्रयामल में ९० अध्याय है । उनमें से प्रस्तुत प्रथम भाग के ४५ अध्यायों का अध्यायगत विषय संक्षेप दिया जा रहा है—

प्रथम पटल में पराश्री परमेशानी के मुखकमल से श्रीयामल, विष्णु यामल, शक्तियामल और ब्रह्मयामल निस्सृत बताए गए हैं। यह रुद्रयामल (उन्हीं यामलों का) उत्तरकाण्ड है। दसवें श्लोक से लेकर ८२ श्लोक तक विविध प्रकार के साधनों की चर्चा की गई है। फिर रुद्रयामल की प्रशंसा है (८३—९२) और यामल शब्द का अर्थ कहा है। फिर यामल में प्रतिपादित विभिन्न साधन कहे गए हैं। ९९ से १०७ तक इस रुद्रयामल की फलश्रुति है। १०७ से ११८ तक ज्ञान एवं भाव की प्रशंसा है। ११९ से १३० तक पुण्यवान् पुरुष के लक्षण और साधक के कर्तव्य वर्णित हैं। पशुभाव से ज्ञान की सिद्धि होती है और वीरभाव से क्रियासिद्धि होती है तथा दिव्य भाव में साधक स्वयं रुद्र हो जाता है (१३०—१३७)। पुन: योग की प्रशंसा (१३८—१३९), पशु एवं वीरभाव में भक्ति विवेचन (१४०—१४५)। दिव्य भाव विवेचन (१४५—१४९), ज्ञान के तीन प्रकार (१५०—१५३), मनुष्य जन्म का दुर्लभत्व (१५४—१६४, आन्तरिक ज्ञान (१६५—१७१) विद्युत् के समान आयु की चञ्चलता (१७२—१७८) एवं व्रती का लक्षण (१७८—१८७)। इसके बाद गुरु के माहात्म्य और उनकी कृपा के विषय में कहा गया है (१८८—१९१)। साधक की आत्मा ही बन्धु है और धर्मशील मनुष्य ही श्रेष्ठ है (१९१—१९६)। पुन: १९७—२१२ श्लोक तक भावत्रय की प्रशंसा की गई है। २१३ से २२० में पीठ प्रशंसा और भावज्ञान का माहात्म्य वर्णित है। फिर (२२१—२४४) गुरु की महिमा और उनके प्रति कर्तव्य बताए गए हैं ।

द्वितीय पटल में कुलाचार विधि वर्णित है। पशुभाव में गुरु का ध्यान एवं पूजन वर्णित है (१०—३७)। पुन: गुरुस्तोत्र और गुरुस्तव की फलश्रुति वर्णित है (३८—५०)। इसके बाद गुरु के लक्षण वर्णित है (५०—५७)। फिर शिष्य के लक्षण और उसके कर्तव्य का प्रतिपादन है (५७—९६)। फिर मन्त्र दीक्षा एवं पुरश्चरण (९७—१२७) तथा दीक्षा विधि वर्णित है (१२८—१४३)। इसके बाद मन्त्र साधन में प्रयुक्त होने वाले ताराचक्र, राशिचक्र, विष्णुचक्र, ब्रह्मचक्र, देव चक्र, ऋणधनात्मक महाचक्र, उल्का चक्र एवं सूक्ष्म चक्र का वर्णन है (१४४—१६२)।

तृतीय पटल में दीक्षाक्रम में चक्र विचार वर्णित है। भगवती आनन्द भैरवी के द्वारा कालाकाल का विचार करने वाले विभिन्न चक्रों का वर्णन है। यहाँ अकडम चक्र (१७—२४), पद्माकार अष्टदल महाचक्र (२४—३३), कुलाकुल चक्र (३३—३९), तारा चक्र (४०—६१), राशिचक्र (६२—७२), कूर्मचक्र (७३—८४), शिवचक्र और गणना विचार (८५—११४), विष्णु चक्र और उसकी गणना (११४—१४५) वर्णित है।

चतुर्थ पटल में ब्रह्मचक्र का वर्णन है। यह चक्र अकालमृत्यु का हरण करने वाला है। इसके ज्ञान से साधक ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेता है। ३—११ श्लोक पर्यन्त इस

चक्र के बनाने की विधि लिखी है। इस चक्र के गृहों में अङ्क और राशियाँ दोनों लिखी जाती है। इनसे साधक अपने शुभाशुभ का ज्ञान करे। इसके बाद नक्षत्र और उनके स्वामी के विषय में विवेचन किया गया है (१४–२६)। वर्णों की राशियों का विवेचन है (२७–३३)। फिर राशिफल का विचार है (३४–४१)। फिर श्रीचक्र का निरूपण किया गया है (४२–७६)। फिर ऋण–धनि चक्र का वर्णन है (७७–१०५)। इसके बाद मन्त्र दोषादि निर्णय के लिए उल्का चक्र वर्णित है (११२–१२३) । फिर इसके बाद सामचक्र का वर्णन किया गया है (१२४–१४७) । इसके बाद चतुषचक्र (१४८–१६८) और सूक्ष्मचक्र का विवेचन किया गया है (१६९–१९२) ।

पञ्चम पटल में मन्त्र संस्कार के लिए महा अकथह चक्र की रचनाविधि वर्णित है। तत्स्थान स्थित वर्णों का फल, प्राणायामादि सिद्धि, वाक्सिद्धि और शिवसायुज्य प्राप्ति आदि विषय वर्णित हैं।

छठवें पटल में पशुभाव (५–६०), वीरभाव एवं दिव्य भाव (६१–८२) साधन के फलों को क्रमशः कहा गया है (५२.५४)। पशुभाव के ही प्रसङ्ग में सुषुम्ना साधना (१३–१४), देवी ध्यान (१५–२१), पूजनविधि (२२–२८), कुण्डलिनीस्तव (२९–३८), पशुभाव प्रशंसा (४९–६०), भाव विद्या विधि (७१–८२) वर्णित है। अन्त में कुमारी के लक्षण (८३–८७) और कुमारी पूजन के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है (८८–१०२)।

सप्तम पटल में कुमारी पूजन का विधान है। आत्मध्यानपरायण पशुभावापन्न साधक के द्वारा कुमारी पूजा की जाती है। पूजाविधि में कुमारी की जाति परीक्षा नहीं होती है। धोबी आदि किसी भी जाति की कन्या को पूजनीय कहा गया है (५–११)। वस्तुतः कुल देवी की बुद्धि से कुमारी पूजनीय होती हैं। यहाँ कुमारी पूजन की विधि सम्यक् रूप से कही गई है। मायाबीज से पाद्य, लक्ष्मीबीज से अर्घ्य और सदाशिव मन्त्र से धूपदीप–दान की विधि कही गई है (६०–६१)। अन्त में कुमारी महामन्त्र का मन्त्रोद्धार किया गया है (६३–६४)। इसके बाद विभिन्न पूजा विधि और उनका मन्त्रोद्धार वर्णित है (६५–९१) फिर कुमारी स्तोत्र का विधान है (९२–९४)।

आठवें पटल में कुमारी पूजन के अङ्गभूत जप एवं होम का विशद विवेचन है। घृताक्त बिल्व पत्र, श्वेत पुष्प, कुन्द पुष्प, करवीर पुष्प और घृताक्तचन्दन एवं अगुरु से मिश्रित हवनीय सामग्री से कुमारी पूजन में हवन का विधान है (१–५)। हवन के अन्त में भगवती के स्तोत्र और मन्त्र एवं फलश्रुति का प्रतिपादन है (१५–३४)। इसके बाद 'तर्पयामि' पद से नियोजित पद्यों का विवेचन है। इन मन्त्रों को पढ़ते हुए मधुमिश्रित क्षीर एवं जल से भगवती का तर्पण करना चाहिए ।

नवें पटल में कुमारी कवच का विधान है। इसे भोज पत्र पर लिखकर चतुर्दशी या पूर्णमासी के दिन हृदय प्रदेश में धारण करने का विधान है। इसके पाठ से महान् पातकी भी सभी पापों से मुक्त हो जाता है और अन्त में उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

दसवें पटल में महान् पुण्यदायक कुमारी सहस्रनाम वर्णित है। इस स्तोत्र की फलश्रुति है कि जो इसे भोज पत्र पर लिखकर हाथ में धारण करता है उसे सभी संकटों से छुटकारा प्राप्त हो जाता है। मन्त्रार्थ, मन्त्र चैतन्य एवं योनि मुद्रा के स्वरूप को जानकर सभी यज्ञों के फल की प्राप्ति होती है। पुनः यहीं पर सहस्रनाम सम्बन्धी कवच का भी उल्लेख है। ६ महीने पाठ करने से साधक तीनों जगत् को मोहित कर लेता है। १ वर्ष के पाठ से खेचरत्व प्राप्ति एवं योगसिद्धि प्राप्त होती है और नित्य पाठ से जलस्तम्भन, अग्नि स्तम्भन और वायु के समान वेग की प्राप्ति होती है। सहस्रनामों से हवन और हवनीय द्रव्य की गणना तथा हवन कर्म का फल अन्त में प्रतिपादित है।

एकादश पटल में दिव्य, वीर एवं पशु भाव का प्रतिपादन है। भाव से ही सब कुछ प्राप्त होता है। यह तीनों लोक भाव के ही अधीन हैं। इसीलिए बिना भाव के सिद्धि नहीं प्राप्त होती है (४३–४४)।

दक्षिण और बाईं नासिका से वायु के आगमन और निर्गमन का फल कहा गया है । मेष, वृष आदि १२ राशियों में क्रमशः १. आज्ञाचक्र २. कामचक्र, ३. फलचक्र, ४. प्रश्न चक्र, ५. भूमिचक्र, ६. स्वर्गचक्र, ७. तुलाचक्र, ८. वारिचक्र, ९. षट्चक्र, १०. सारचक्र, ११. उल्काचक्र और १२. मृत्युचक्र का निर्माण करना चाहिए। इन चक्रों में अनुलोम और विलोम क्रम से षट्कोण बनाना होता है। सभी चक्रों में स्वर ज्ञान और वायु गति को जानकर अपने प्रश्नों का विचार करना चाहिए ।

द्वादश पटल में काम चक्र के स्वरूप का प्रतिपादन है। इस चक्र का सम्पाद किस रीति से करना चाहिए ? उसमें प्रश्न के प्रकार और उसके फल का विवेचन है। पुनः फलचक्र का, फिर आज्ञाचक्र के स्वरूप एवं फल सभी का निरूपण है।

त्रयोदश पटल में आज्ञाचक्रगत राशि, नक्षत्र एवं वार की गणना का विधान है। वर्णों के स्वरूप को जानकर किए गए प्रश्नों के विभिन्न फलों का प्रतिपादन है। अश्विनी आदि ८ नक्षत्रों में, फिर आश्लेषा से लेकर चित्रा तक, फिर स्वाती से वसु नक्षत्रों में, फिर उत्तराषाढत्रा से लेकर रेवती आदि नक्षत्रों में किए गए प्रश्नों के विविध फलों का विधान है।

चतुर्दश पटल में आज्ञाचक्र का ही विस्तार है। भरणी आदि २७ नक्षत्रों के स्वरूप एवं फल का विस्तार से वर्णन है।

पन्द्रहवें पटल में आज्ञाचक्र का ही विस्तार से माहात्म्य वर्णित है। ब्रह्मस्तोत्र, ब्रह्मविद्या, ब्रह्मज्ञानी के लक्षण, ब्रह्ममार्गस्थों का षट्चक्रमण्डल में स्वरूप तथा वैष्णव भक्त के लक्षण वर्णित हैं।

षोडश पटल में आज्ञाचक्र का भुवन करण सामर्थ्य वर्णित है। वहाँ पर अधोमण्डलमण्डित द्विबिन्दुनिलय के द्विदल स्थान में श्रीगुरुचरणों का ध्यान कहा गया है। उसके मध्य में महावह्निशिखा का भी चिन्तन वर्णित है। इस योग के प्रसाद से साधक को चिरंजीवित्व और वागीश्वरत्व प्राप्त होने का निर्देश है। फिर त्रिखण्ड आज्ञाचक्र में

श्मशानाधिप से घिरे हुए, कलानिधि, महाकाल, तीक्ष्ण दंष्ट्रा वाले बहुरूपी सुरेश्वर का ध्यान कहा गया है। नासिका के ऊर्ध्व भाग में भ्रूमध्य में परेश्वर काल रुद्र के ध्यान से शीघ्र ही तन्मयता होती है। फिर नाना अलङ्करणों से विभूषित, नवयौवना, रौरवादि नरकों का विनाश करने वाली डाकिनी देवी के ध्यान का विधान है। यही भगवती त्रिपुरसुन्दरी नाम से विख्यात हैं। पूरक, कुम्भक एवं रेचक प्राणायाम के द्वारा अत्यन्त मनोयोग से इनका ध्यान करना चाहिए। छः मास तक प्रातः, सायं और निरन्तर ध्यान से महती सिद्धि प्राप्त होती है। एक वर्ष पर्यन्त ध्यान से खेचरी सिद्धि मिलती है और साधक योगिराट् हो जाता है। अन्ततः कौलमार्ग का पालन करते हुए वह अमर हो जाता है।

सप्तदश पटल में अथर्ववेद का लक्षण कहा गया है। यह सभी वर्णों के लिए सार रूप है और शक्त्याचार के समन्वय के रूप में वर्णित है। फिर ऋगादि वेद, जलचर–भूचर–खेचर, कुलविद्या, महाविद्या, बिन्दुत्रयलयस्थिति, ब्रह्मा–विष्णु–शिव और चौबीस तत्त्व आदि सभी अथर्ववेद में निवास करते हैं। पुरदेवता रूप कुण्डलिनी के चैतन्यकरण में मात्र छः मास के अभ्यास की उपादेयता वर्णित है। उस चैतन्य सम्पत्ति से बहुत से फलों का प्रतिपादन है।

कामरूप मूलाधार में वह देवी कुण्डलिनी प्रज्वलित रहती है। तब वह सहस्रदल कमल में शिरोमण्डल में प्रज्वलित होकर सम्बन्ध स्थापित करती है। तब साधक योगिराड् होकर अत्यन्त परमानन्द में निमग्न हो जाता है। जब वह भगवती कुण्डलिनी शिर में समागम करके अमृत पान करती है, तब साधक परम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। यहीं पर वायवी सिद्धि का उपाय वर्णित है। वहाँ मिताहार, मन का संयम, दया, शान्ति, सर्वत्र समबुद्धि, परमार्थ विचार, भूमि के तल में शर शय्या पर शयन, गुरु के चरणों में श्रद्धा, अतिथिसत्कार, ब्रह्मचर्यव्रत का पालन, हर्ष या शोक में सर्वत्र समभाव, मौन धारण, एकान्त स्थान का सेवन, बहुत न बोलना, हंसी या हिंसा से रहित रहना आदि भगवती कुण्डलिनी के चैतन्य करने के साधन हैं। ललाट, भ्रूमध्य, अष्टपुर कण्ठ में, नाभिप्रदेश में और कटि आदि में स्थित पीठों में वायु निरोधात्मक कुम्भक प्राणायाम से कुण्डलिनी जागरण का परमोपाय निरूपित है।[१] इस रीति से एक वर्ष तक अभ्यास करने पर महाखेचरता प्राप्त होती है। इसी वायवी सिद्धि के प्रसङ्ग में साधक रूप से महर्षि वसिष्ठ की चर्चा भी की गई है।[२]

महर्षि वसिष्ठ चिरकाल तक तपस्या करते रहे किन्तु उन्हें साक्षात् विज्ञान नहीं प्राप्त हुआ। इससे क्रुद्ध होकर महर्षि अपने पिता ब्रह्मा के पास गए और जब उनसे अन्य मन्त्र के लिए कहा और तपोमार्ग से भगवती की वायवी सिद्धि के लिए उत्साहित किया। तब महर्षि वसिष्ठ ने समुद्र तट पर एक हजार वर्ष तक जप योग किया। फिर भी सिद्धि जब प्राप्त नहीं हुई तब वे महाविद्या को शाप देने के लिए उद्यत हुए। शाप देते ही भगवती महाविद्या प्रकट हो गई और कहा[३] 'मैं वेद से गोचर नहीं हूँ। आप बौद्ध देश चीन में

---

१. द्र० रुद्र० १७.५६–६० । २. द्र० रुद्र० १७.१०६–१०८ ।
३. द्र० रुद्र० १७.१२२–१२४ ।

अथर्ववेद में जाइए।' फिर महर्षि वसिष्ठ चीन गए और वहाँ भगवान् बुद्ध ने वसिष्ठ को कुलमार्ग का उपदेश दिया। तभी से शक्ति चक्र, सत्त्वचक्र, नौ विग्रह और विष्णु का आश्रय करने वाली भगवती कात्यायनी का जप आरम्भ हुआ।[१] यहाँ भगवती के स्वरूप का भी वर्णन है। परममार्ग रूप से कुलमार्ग का विधान है जिसका आश्रय लेकर सृष्टि कर्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु और संहारकारी रुद्र प्रकट होते हैं। इस प्रकार के वर्णन में यहाँ जीवात्मा और परमात्मा का महान् सम्बन्ध प्रकाशित किया गया है (१०६–१६१)।

अष्टादश पटल में भगवती के कामचक्र का वर्णन है जिसमें वर्णों से किए गए प्रश्न का निर्णय प्रतिपादित है। आज्ञाचक्र के मध्यभाग में करोड़ों रस वाली नाड़ियों के मध्य में मनोरम कामचक्र की स्थिति है। इनके कोष्ठकों में वर्णों के स्थापन से होने वाले फल का निर्देश है। सभी चक्रों में यह अत्यन्त उत्तम कामचक्र है। काम्य फल के कारण इससे उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। विभिन्न वर्णों में किए गए प्रश्नों में वर्ण भेद से फल का कथन है। जैसे कवर्ग से प्रश्न करने पर कामसम्पत्ति एवं श्री समृद्धि प्राप्त होती है।[२] इस प्रकार वर्ग के अनुसार शुभ मन्त्र ग्रहण करने से साधक को सिद्धि प्राप्त होती है।

उन्नीसवें पटल में प्रश्न चक्र के मध्य षडाधार के भेदन का वर्णन है। फिर निर्विकल्पादि साधनभूत कालचक्र के फल का निर्देश है। फिर आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित प्रश्नचक्र के विषय में फल बताए गए हैं। काल ही मृत्यु को देने वाला है और उस काल की सूक्ष्मगति का ज्ञान इसी चक्र से होता है। ग्रह, नक्षत्र एवं राशियों से सम्पृक्त प्रश्न की व्यवस्था की गई है।[३] वर्ग में किए गए प्रश्न में इच्छा सिद्धि तथा खेचरी मेलन होता है। तवर्ग में किए गए प्रश्न से दीर्घजीवन और इन्द्र के समान ओजस्विता होती है और प वर्ग में प्रश्न से परमस्थान की प्राप्ति होती है ।

बीसवें पटल में सभी मन्त्रों के सार स्वरूप फलचक्र का वर्णन है। उसका षट्कोणों में छः ध्यान बताया गया है। अष्टकोणों में अङ्कभेद से स्थित वर्णों का ध्यान करके खेचरता की प्राप्ति होती है। यह फलचक्र प्रश्नचक्र के ऊर्ध्व भाग में स्थित जानना चाहिए। फलचक्र के प्रसाद से तत्त्व चिन्तन में साधक परायण हो जाता है। अष्टकोणों के ऊर्ध्व भाग में वर्णमाला का क्रम इस प्रकार कहा गया है —

> **येन भावनमात्रेण सर्वज्ञो जगदीश्वरः ।**
> **ओ औ पवर्गमिवं हि यो नित्यं भजतेऽनिशम् ॥**
> **तस्य सिद्धिः क्षणादेव वायवीरूपभावनात् ।**
> **चन्द्रबीजस्योदृर्ध्वदिशे विभाति पूर्णतेजसा ॥** (रुद्र. २०.३२,३३)

जिसकी भावना मात्र से जगदीश्वर सर्वज्ञ बन गए । ओ औ तथा प वर्ग को जो निरन्तर भजता रहता है, उस वायवी रूप की भावना से उसे क्षणमात्र में सिद्धि हो जाती है, यह चन्द्रबीज के ऊपर वाले देश में पूर्ण तेज से शोभित होता है ।

---

१. द्र० रुद्र० १७ . १३५–१३८ ।
२. द्र० रुद्र० १८ ७७–८३ ।
३. द्र० रुद्र० २० . ३२–३९ ।

इस प्रकार फलचक्र का निरूपण किया गया है, जिसके ध्यान से साधक महाविद्यापति हो जाता है।

इक्कीसवें पटल में योगमार्ग के अनुसार सर्वसिद्धिप्रद वीरभाव का साधन कहा गया है। महायोग तो वेदाधीन है, और कुण्डली शक्ति योग के अधीन है, कुण्डली के अधीन चित्त है और चित्त के अधीन समस्त चराचर जगत् है। इस वीरभाव के साधन के बाद प्रथम दल पर (१) **भूमिचक्र** का निरूपण है। यहाँ छः गृह वर्णित हैं। मध्य गृह में अग्निबीज रं का ध्यान होता है। दक्षिण गृह में वारुण बीज 'वं' का ध्यान होता है। (वाम गृह में) देवेन्द्र पूजित पृथ्वी बीज लं का ध्यान होता है, दक्षिण पार्श्व में श्री बीज श्रीं का वामपार्श्व में ब्रह्मसम्मत प्रणव बीज ॐ का ध्यान होता है। इस प्रकार अनेक तरह से भूमि चक्र का ध्यान कहा गया है। द्वितीय दक्षिण पत्र पर महान् प्रभा वाले वान्तबीज 'यं' का ध्यान करना चाहिए। वहाँ पर स्वर्ग की शोभा से सम्पन्न (२) **स्वर्ग चक्र** का अनेक प्रकार से ध्यान कहा गया है। वायवी शक्ति से सम्पन्न इस चक्र के ध्यान से साधक वाक्पति हो जाता है। तृतीय दल पर (३) **तुला चक्र** का विशिष्ट ध्यान एवं उसके फल आदि का निरूपण किया गया है। इस तुला चक्र में षकार से व्याप्त मौन भाव से जप किया जाता है। इससे साधक योगिराट् होकर कुण्डलीजागरण में सामर्थ्य प्राप्त करता है। इसके बाद चतुर्थ दल (४) **वारिचक्र** का निरूपण है। उस वारिचक्र में गङ्गा आदि महानदियों और लवणादि सप्त सागर का एवं समस्त तीर्थों का वर्णन है। इस चक्र के साङ्गोपाङ्ग ध्यान से चिरजीवन एवं योगिराजत्व की प्राप्ति होती है।

बाइसवें पटल में षट्चक्र का फलोदय कहा गया है। (१) प्रथम मूलाधार चक्र चार दलों का महापद्म है जो व से स पर्यन्त (व श ष स) चार स्वर्णिम वर्ण के अक्षरों से युक्त है। इसमें शक्ति–तत्त्व और ब्रह्म–तत्त्व का ध्यान कहा गया है। मूल–विद्या की सिद्धि इसका फल है। (२) मूलाधार महापद्म से ऊपर षड्दल वाले महा प्रभावान् स्वाधिष्ठान् महाचक्र की स्थिति है। इसके छ दलों पर ब से ल पर्यन्त (ब भ म य र ल) वर्णों का और कर्णिका में राकिणी एवं विष्णु का ध्यान करना चाहिए। (३) इसके ऊपर नाभि प्रदेश में करोड़ों मणियों के समान प्रभा वाले मणिपूर चक्र के दश दल कमल पर ड से फ पर्यन्त (ड ढ ण त थ द ध न प फ) वर्णों और लाकिनी एवं रुद्र का ध्यान करना चाहिए। (४) उसके ऊपर बन्धूक पुष्प के समान द्वादश दल वाले अरुण वर्ण के महामोक्षप्रद अनाहत चक्र पर क से ठ पर्यन्त (क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ) वर्णों का और लाकिनी एवं रुद्र का ध्यान करना चाहिए। (५) उसके ऊपर कण्ठ प्रदेश में सोलह दल वाले विशुद्ध चक्र में सोहल स्वरों का और शाकिनी एवं सदाशिव का ध्यान करना चाहिए। (६) पुनः उसके ऊपर भ्रूकुटि में बिन्दु पद हंस स्थान वाले हिमकुन्देन्दु के समान प्रभा वाले दो दल कमल पर आज्ञाचक्र में ल क्ष वर्णों का और सदाशिव शाकिनी का ध्यान करना चाहिए । पुनः सोलह पत्र वाले कण्ठ स्थित अनाहत चक्र में सोलह स्वरों का ध्यान कर कुण्डलिनी को ऊपर ले जाना चाहिए। फिर आज्ञा चक्र में उसे लाकर उसके ध्यान से साधक जीवन्मुक्त हो जाता है।

फिर अनेक श्लोकों में लय योग के साधक को किस प्रकार का होना चाहिए—इसकी चर्चा की गई है।[१] और मन को ही सभी पापों का कारण बताया गया है—

मनः करोति कर्माणि मनो लिप्यति पातके ।
मनः संयमनी भूत्वा पापपुण्यैर्न लिप्यते ॥ (रुद्र० २२.३६)

इसके बाद साधक को सिद्धि प्राप्त करने के उपाय तथा श्रेष्ठ साधक के समयाचार का निरूपण है।[२] फिर कुण्डलिनी के अभ्युत्थान के लिए कुलाचार का वर्णन है ।[३] और प्राणायाम को ही सिद्धि—प्राप्ति का उपाय कहा है।

आगे प्रणव का ध्यान और प्रणव से हंस तथा हंस ही सोऽहं कहा गया है। अन्ततः सोऽहं का ज्ञान ही महाज्ञान है जिससे षट्चक्र का भेदन कहा गया है।[४]

तेइसवें पटल में वायु भक्षण की विधि का निरूपण है। साधक को पूरक, कुम्भक एवं रेचक विधि से उदर को वायु पूरित पञ्च प्राणों को वश में करना चाहिए।[५] बिना आसनों के प्राणायाम की सिद्धि नहीं होती । अतः इसी प्रसङ्ग में पद्मासन आदि सव्यापसव्य भेद से (३२ + ३२ =) ६४ आसनों का विधान किया गया है।[६] इस प्रकार वायु को वश में करने के लिए इस पटल में आसनों का निरूपण किया गया है।

चौबीसवें पटल में बहुत से अन्य आसनों का वर्णन है। पृथ्वी पर सौ लाख हजार आसन कहे गए है। इनमें से कूर्मासन से लेकर वीरासन तक कुछ मुख्य आसनों के स्वरूप का वर्णन है। जब तक चित्त स्थिर नहीं होता, तब तक श्वासन का साधन साधक को नहीं करना चाहिए (११६—११८)। इसके बाद अष्टाङ्ग योग का महत्त्व वर्णित है (१३२—१४४)। अष्टाङ्ग योग की साधना में आसन से दीर्घ जीवन और यम से ज्ञान एवं ज्ञान से कुलपतित्व प्राप्त होता है। नियम से पूजा में शुद्धता, प्राणायम से प्राणवायु का वश में करना, प्रत्याहार से चित्त में भगवान् के चरण कमल की स्थापना, धारणा से वायुसिद्धि, ध्यान से मोक्ष सुख और समाधि से महाज्ञान प्राप्त होता है। अन्त में स्थिर चित्त में श्रीविद्या का ध्यान कहा गया है ।

पचीसवें पटल में सृष्टि की प्रक्रिया में उत्पत्ति, पालन एवं संहार का निरूपण है । अव्यक्त रूप प्रणव से ही सृष्टि होती है। अ उ म— ये तीनों अक्षर आकाश में सदैव भासित होते रहते हैं। अतः सूक्ष्म अकार से सृष्टि और स्थूल कला वाले निरक्षर से उस पर विजय (ॐ) का विनाश होता है। मायादि के वशीकरण से योगप्रतिष्ठा होती है। काम, क्रोध, मोह, मद, मात्सर्य एवं लोभादि से योग की पराकाष्ठा होती है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, मिताहार, प्रपञ्चार्थवर्जन, शौच, ब्रह्मचर्य, आर्जव, क्षमा एवं धैर्य आदि साधक के लिए आवश्यक हैं । योगी का चरमावस्था में ब्रह्मज्ञान परमावश्यक है —

---

१. रुद्र० २२.१५—३६ २. रुद्र० २२. ३७—६१
३. रुद्र० २२. ६२—८७ ४. रुद्र० २२.८८—१०९
५. रुद्र० २३.२—२० ६. रुद्र० २३.२३—११४

श‍ृणुष्व योगिनां नाथ धर्मज्ञो ब्रह्मसञ्ज्ञक ।
अज्ञानध्वान्तमोहानां निर्मलं ब्रह्मसाधनम् ॥
ब्रह्मज्ञानसमो धर्मो नान्यधर्मो विधीयते ।
यदि ब्रह्मज्ञानधर्मी स सिद्धो नात्र संशयः ॥
कोटिकन्याप्रदानेन कोटिजापेन किं फलम् ।
ब्रह्मज्ञानसमो धर्मो नान्यधर्मो विधीयते ॥ (रुद्र० २५.३४–३६)

इसी ब्रह्मज्ञान के प्रसङ्ग में योगियों के सूक्ष्म तीर्थ की चर्चा की गई है –

ईडा च भारती गङ्गा पिङ्गला यमुना मता ।
ईडापिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्ना च सरस्वती ॥
त्रिवेणीसङ्गमो यत्र तीर्थराजः स उच्यते ।
त्रिवेणीसङ्गमे वीरश्चालयेत्तान् पुनः पुनः ॥
सर्वपापाद् विनिर्मुक्तः सिद्धो भवति नान्यथा ।
पुनः पुनः भ्रामयित्वा महातीर्थे निरञ्जने ॥ (रुद्र० २५.४५–४७)

फिर प्राणायाम का तीनों सन्ध्याओं में विधान किया गया है (५७–६९)। फिर योगाभ्यास की प्रशंसा कर प्राणायाम के अन्य प्रकार कहे गए हैं (७०–८१)। फिर योगियों के जप के नियम (८२–९७) बताकर खेचरीमुद्रा तथा शाङ्करीविद्या का निरूपण है। अन्त में अध्यात्म तत्त्व का निरूपण करके प्राणायाम को ही सर्वोपरि कहा गया है।

छब्बीसवें पटल में जप एवं ध्यानान्तर–गर्भित प्राणायाम का निरूपण है। जप भी व्यक्त, अव्यक्त एवं अतिसूक्ष्म भेद से तीन प्रकार का बताया गया है। व्यक्त जप वाचिक होता है, अव्यक्त उपांशु और अतिसूक्ष्म जप मानस होता है। ध्यान के २१ प्रकार बताते हुए उसे मनोमात्रसाध्य बताया गया है।

अन्त में पञ्चमकार के सेवन की विधि बताई गई है। वीराचार के साधक के लिए कुल कुण्डलिनी का ध्यान कहकर (६०–६६) स्नान एवं सन्ध्या (७६–९४), उपासक द्वारा तर्पण के प्रकार (९७–१००) एवं सोऽहं भाव से पूजा (अन्तर्याग) की विधि कही गई है (१०१–११७)। योगियों के अन्तर्याग में पुष्प एवं होमविधि वर्णित है (११८–१३०)।

आकाश पद्म से निस्सृत सुधापान मद्य है, पुण्य एवं पाप रूप पशु का ज्ञान की तलवार से संज्ञपन कर परशिव का मनसा मांस खाना ही मांस भक्षण है। शरीर जल में स्थित मत्स्यों का खाना ही मत्स्य भक्षण है। महीगत स्निग्ध एवं सौम्य से उद्भूत मुद्रा का ब्रह्माधिकरण में आरोपित कर साधक तर्पण करता है और यही मुद्रा भोजन है। परशक्ति के साथ अपनी आत्मा का (ध्यानगत) संयोग ही मैथुन कहा गया है (१३७–१४८)।

सत्ताइसवें पटल में पुनः प्राणवायु के धारण प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि की विस्तार से चर्चा है। प्रतिपदा–द्वितीया आदि तिथि से लेकर अन्य तिथियों में

प्राणायाम की विधि कही गई है। तिथि का व्यत्यास करने से मरण, रोग एवं बन्धुनाश होता है। प्राणायाम का फल दूरदर्शित्व और दूरश्रवण है। इन्द्रियों का प्रत्याहार कर ईश्वर में भक्ति, खेचरत्व तथा विषय–वासना से निवृत्ति है। धारणा से धैर्य धारण और प्राणवायु का शमन होता है, ध्यान का फल मोक्षसुख है। समाधि का फल जीवात्मा एवं परमात्मा के मिलन से समत्व भाव की उत्पत्ति है।

पुन: अनाहत, विशुद्ध, महापूरक, मणिपूरक और बिन्दु आदि चक्रों का स्वरूप और उनके फल का वर्णन है। षट्चक्र भेदन की प्रक्रिया और पञ्चकृत्यविधि विस्तार से प्रतिपादित है। अन्त में भगवान् शिव के कीर्तन, ध्यान मनन, दास्यभाव, सख्य एवं आत्मनिवेदन का वर्णन है। इस भक्तिभाव से पूजन द्वारा जीवन्मुक्ति की प्राप्ति होती है।

अट्ठाइसवें पटल में मन्त्रसिद्धि का लक्षण कहा गया है। जब मन्त्र सिद्ध होने लगता है तो क्या क्या लक्षण साधक में प्रगट होते हैं, उन्हें १४ श्लोकों में बताया गया है, फिर मन्त्र के दोषों का कथन है। भुवनेशी महाविद्या का वीर्यहीना होना बताया गया है और कामेश्वरी महाविद्या कामराज के द्वारा आविद्ध बताई गई है (१८) इस प्रकार भैरवी ब्रह्मदेव द्वारा शापित है। फिर अनेक महाविद्याओं के विधि द्वारा शापित होने का वर्णन है। योगमार्ग के अनुसरण से ही ये प्रसन्न होती हैं। इन महाविद्याओं की सिद्धि (१) वीरभाव से होती है अथवा (२) पुरश्चरण कर्म द्वारा ।(३) वीरभाव से स्त्री का पूजन कुल देवी समझकर किया जाता है। षोडशी देवी ही शक्ति के नाम से अभिहित होती है। (४४) योगमार्ग में संलग्न स्त्री डाकिनी देवी कही गई हैं। (४९)। सुन्दरी नारी पराविद्या स्वरूपा है। अत: भाव से पूजन करने से सिद्धि प्राप्त होती है (६१)। फिर पुरश्चरण प्रक्रिया से महाविद्याओं के शाप के उत्कीलन की प्रक्रिया वर्णित है (६२–६५)।

इसके बाद षट्चक्र भेदन की प्रक्रिया वर्णित है। कुण्डलिनी महाभगवती योग से चैतन्यमुखी होती है। अत: कन्दवासिनी देवी (कुण्डलिनी) का स्तोत्र एवं उनका मन्त्र विन्यास भी उन्हीं श्लोकों के मध्य विस्तार से वर्णित है।

उन्तीसवें पटल में पुन: षट्चक्र भेदन कहा गया है। षट् चक्र का ज्ञाता साधक सर्वशास्त्रार्थ का ज्ञाता होता है। मूल पद्म के चार दलों पर व श ष स वर्ण होते हैं। (१) श्रेष्ठभाव से साधन के योग्य, नारायण स्वरूप भावना के योग्य, पञ्च स्थान से उच्चरित होने वाले, तेजोमय आद्याक्षर वकार का ध्यान करना चाहिए ।(२) सुवर्णाचल के समान प्रभा वाले, गौरीपति को श्री सम्पन्न करने वाले, पुराणपुरुष लक्ष्मीप्रिय, सुवर्ण वर्ण से वेष्टित शकार का प्रसन्नता से सर्वदा कमल के दक्षिण पत्र पर ध्यान करना चाहिए। (३) ईश्वरी के षष्ठ गुणों के अवतंस षट्पद्म संभेदन करने वाले हेमाचल के समान वर्ण वाले ष वर्ण का ध्यान तृतीय पत्र पर करे। (४) माया तथा महामोह का विनाश करने वाले घननाथ मन्दिर में विराजमान जय प्रदान करने वाले सकार का चतुर्थ पत्र पर ध्यान करे। फिर इसके बाद इन चार वर्णों का क्रमश: ध्यान तथा स्वयम्भूलिङ्ग का ध्यान और उन्हें घेरे हुए सर्प के समान कुण्डलिनी का ध्यान वर्णित है (१२–२०) । फिर सुषुम्ना, वज्र, चित्रिणी, ब्रह्म आदि

नाड़ियों का विवेचन है। अन्त में योगियों द्वारा महालय में मन को लीन करना विवेचित है जिसे 'महाप्रलय' के नाम से जाना जाता है।

तीसवें पटल में मूलाधार पद्म का विवेचन है। षट्चक्र भेदन के लिए भेदिनी मन्त्रोद्धार है और सभी योगिनी मन्त्र का विधान है। मूलाधार में ब्रह्मदेव से युक्त डाकिनी का ध्यान, ब्रह्ममन्त्र तथा डाकिनीमन्त्रराज का उद्धार किया गया है। फिर डाकिनी स्तोत्र में डाकिनी स्तुति (२७–३४) है और ब्रह्म की स्तुति (३५–३८) है। इस स्तोत्र के पाठ मात्र से महान् पातकों का नाश हो जाता है और यदि साधक विशाल नेत्र वाले जगन्नाथ का ध्यान कर स्तोत्र पाठ करता है तो वह योगिराज बन जाता है।

इकतीसवें पटल में भेदिन्यादि देवियों की साधना विधियों का वर्णन है। भेदिनी देवी के साधन से ग्रन्थियों का भेदन सरलता से हो जाता है। इस साधन में प्रथमत: डाकिनी का ध्यान कहा गया है फिर स्तव है (८–१७)।

इस कुण्डलिनी स्तोत्र के पाठ से अनायास सिद्धि प्राप्त होती है और वायु वश में हो जाता है, योगिनियों के दर्शन अकस्मात् होते हैं। इसके बाद छेदिनीस्तव के मध्य श्री वागेशी, कालिका, छेदिनी, लाकिनी राकिणी एवं काकिनी की स्तुति है। इसके बाद योगिनीस्तोत्रसार का वर्णन है (३६–४५)। इस स्तोत्र के पाठ से साधक शिव का भक्त हो जाता है। वह मूलाधार चक्र में स्थिर होने के बाद षट्चक्र में विचरण करता हुआ स्वराज्य प्राप्त करता है।

बत्तीसवें पटल में कुडलिनी देवी के स्तोत्र, ध्यान, न्यास तथा मन्त्र को कहा गया है। पहले कुण्डलिनी का ध्यान है (५–१३)। फिर कुण्डलिनी स्तोत्र है (२१–४२)। जब तक कुण्डलिनी सिद्ध न हो तब तक जप करे। मानस होम, मानस ध्यान, मानस जप, मानस अभिषेक से भावशुद्धि द्वारा भगवती कुण्डलिनी सिद्ध होती हैं। जो प्रणव से सम्पुटित कर पवित्रतापूर्वक नियम से इस कन्दवासिनी स्तोत्र का पाठ करता है वह पृथ्वी में कुण्डलिनी पुत्र हो जाता है—यह इस स्तोत्र की फलश्रुति है ।

तैंतीसवें पटल में कुल कुण्डली कवच का वर्णन है। इसके ऋषि ब्रह्मा हैं और कुल कुण्डलिनी देवता है। फिर देवी से विभिन्न अङ्गों की रक्षा करने की प्रार्थना की गई है (६–६५)। इस कवच के पाठ से रोगमुक्ति, राज्यप्राप्ति और सर्वसिद्धि प्राप्ति होती है है

चौतीसवें पटल में जनन एवं मरण से छुटकारा प्राप्ति के लिए पञ्चस्वर योग का वर्णन है। यह अत्यन्त गोपनीय योग है। भगवती कुण्डलिनी के १००८ नामों के पाठ से साधक महायोगी हो जाता है। नेती, दन्ती, धौती, नेउली और क्षालन ये पञ्चस्वर योग हैं। फिर पञ्चामरा द्रव्यों का विधान है। दूर्वा, विजया, बिल्वपत्र, निर्गुण्डी, काली तुलसी—इनके पत्तो को समान मात्रा में लेकर विजया को दुगुना लेना चाहिए। इसके भक्षण मन्त्रों का निर्देश भी किया गया है। पञ्चामरा का विधान कर नेती योग (४०–४४) और दन्ती योग का (४५–५३) वर्णन है।

पैंतीसवें पटल में धौती योग की विधि वर्णित है। एक हाथ से लेकर ३२ हाथ तक की धोती (वस्त्र) लेना चाहिए। फिर २१–२८ श्लोकों में नेउली कर्म विर्णित है। फिर २८–४५ श्लोक तक क्षालन नाड़ी शोधन का वर्णन और सभी पञ्चस्वर कर्म की फलश्रुति कही गई है।

छत्तीसवें पटल में भगवती कुण्डली देवी के अष्टोत्तर सहस्रनामस्तोत्र का निरूपण है। अष्टोत्तर सहस्रनाम जप के बाद कवच का पाठ कर अपनी रक्षा करनी चाहिए। (१७१–१७५)। इस सहस्रनाम के जप से और कवच के पाठ से करोड़ों जन्मों के पापों का नाश हो जाता है।

सैंतीसवें पटल में पीताम्बरधारी वंशीनाद वाले भगवान् कृष्ण का विमल ध्यान वर्णित है। बिना कृष्णपदाम्भोज के ध्यान के स्वाधिष्ठान चक्र पर विजय नहीं हो सकती। अत: स्वाधिष्ठान भेदन ही इसका फल है।

अड़तीसवें पटल में भगवान् श्री कृष्ण की ध्यानविधि विस्तृत रूप से वर्णित है। इस पटल के ५वें और ६ वें श्लोक में ध्यान का मन्त्र भी गुप्त रूप से उक्त है। पुन: भगवान् नरसिंह के भी ध्यान मन्त्र का संकेत है (१५–१७)। इस ध्यान से स्वाधिष्ठान में सिद्धि प्राप्त कर अपनी आत्मा में चिन्मय कृष्ण में मन का लय करना चाहिए।

उन्तालीसवें पटल में भगवान् श्रीकृष्ण के स्तोत्र एवं कवच पद्धति का विस्तार से प्रतिपादन है। इस स्तोत्र पाठ से पहले साधक उनके कवच मन्त्र से पहले आत्म रक्षा कर ले। इस विधि से एक मास में ही षड्दल में सिद्धि प्राप्त होती है।

चालिसवें पटल में षड्दल कमल के ६ वर्णो का पृथक्–पृथक् ध्यान प्रतिपादित है (१९–२१) । इस प्रकार से षड्दलवर्ण के प्रकाश से शरीर में चित्त की निर्मलता से प्राणवायु की भी शुद्धि होती है ।

इकतालिसवें पटल में राकिणी के साथ योगिराज श्रीकृष्ण का स्तवन है (२०–२१)। इस स्वाधिष्ठान राकिणी स्तोत्र में कृष्णप्रिया से सुख देने की प्रार्थना की गई है। कुलेश जननी माता राधेश्वरी से रोग आदि शत्रुओं से शरीर रक्षा की प्रार्थना की गई है। इस प्रकार स्तोत्र एवं कवच का विस्तार से वर्णन है। इस स्तोत्र के प्रभाव से भव बन्धन से मुक्ति पाकर विश्वामित्र के समान साधक जितेन्द्रिय हो जाता है और भगवान् कृष्ण में अचल भक्ति प्राप्त करता है। इस स्तोत्र का पाठ षट्चक्र भेद के समय सदैव किया जाता है।

बयालिसवें पटल में राकिणी एवं श्रीकृष्ण की प्रीति के लिए हवन एवं तर्पण का विधान है। मन्त्रोद्धार, फिर तर्पण एवं अभिषेक, अन्त में अष्टाङ्ग प्रणाम पूर्वक अर्चना और अष्टोत्तर सहस्रनाम का पाठ करना चाहिए । इस सहस्रनाम की विशेषता है कि इसमें एक नाम श्रीकृष्ण का है और उसी चरण में अन्य नाम राकिणी देवी के हैं । जैसे –

मुकुन्दो मालती माला विमलाविमलाकृति: ।

रमानाथो महादेवी महायोगी प्रभावती ॥ (रुद्र० ४२.१८–२०)

इस स्तोत्र के पाठ से साधक शान्ति प्राप्त करता है । वह अकाल मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है और सभी व्याधियों का नाश होता है । अनायास ही साधक योगिराट हो जाता है। अन्त में कैलासदर्शन आदि और अष्टाङ्गसाधन की विधि कही गई है।

तिरालिसवें पटल में मणिपूरचक्र के भेदन की विधि का निरूपण है। (५३–५४, ५९–६०) यहीं पर भगवान् रुद्र के ध्यान विधि का प्रतिपादन है। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारों से उनका पूजन, प्राणायाम और भक्तिपूर्वक मन्त्र जाप करना चाहिए। जप समर्पण करके पुनः तीन प्राणायाम करे और स्तोत्र एवं कवच से अपने हृदय में देवी को प्रसन्न करे।

चौवालिसवें पटल में मणिपूर भेदन के प्रसङ्ग में ही त्रितत्त्वलाकिनी शक्ति का स्तवन किया गया है। मणिपूर का ध्यान कर क्या नहीं सिद्ध किया जा सकता है। हृदयपद्म के अधोभाग में विधिपूर्वक ध्यान करके योगिराट् होता है और रुद्राणी सहित महारुद्र का दर्शन प्राप्त करता है। इस प्रकार २४ श्लोकों तक पूजा क्रम का विधान कर २५–३३ तक स्तोत्र है। ३४–३७ तक स्तोत्र की फलश्रुति कही गई है।

पैंतालिसवें पटल में वर्ण ध्यान का वैशिष्ट्य निरूपित है। पूर्वादि दल से लेकर सभी वर्णों का पृथक्–पृथक् ध्यान कहा गया है। ड से लेकर फ पर्यन्त दश वर्णों का ध्यान वर्णित है (४२–५१)। रक्त एवं विद्युत् के समान चमक वाले वर्णों का ध्यान कर सदा कर्णिका के मध्य कुण्डलिनी का ध्यान करे (५३–५८)। फिर कुण्डलिनी का ध्यान प्रतिपादित कर अन्त में रुद्राणी स्तोत्र के पाठ का विधान है ।

बुद्धवसिष्ठ का तारा सम्बन्धी वृत्तान्त

दस महाविद्याओं में से तारा की उपासना विधि सर्वप्रथम वसिष्ठ मुनि के द्वारा महाचीन देश से लाई गई थी । इसका सबसे प्राचीन प्रमाण रुद्रयामल एवं ब्रह्मयामल में प्राप्त होता है । यही मूल उत्स है जो तारा उपासना सम्बन्धी अन्य प्रकरण ग्रन्थों में प्राप्त होता है ।

रुद्रयामल में वसिष्ठ द्वारा तारा महाविद्या की उपासना की कथा १७ वें पटल के १०६ श्लोक से लेकर १६१ श्लोक तक प्राप्त होती है –

वसिष्ठो ब्रह्मपुत्रोऽपि चिरकालं सुसाधनम् ।
चकार निर्जने देशे कृच्छ्रेण तपसा वशी ॥१०६ ॥

... ...

... ...

मद्यं मासं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च ।
पुनः पुनः साधयित्वा पूर्णयोगी बभूव सः ॥१६१ ॥

विषयानुक्रमणिका